E CONTENT

ईल्बर्ट बिल विवाद (1982-84)

SEMESTER-III-CC-XIII-

Unit-I-Beginning of

Indian Nationalism

(Elbert Bill Controversy)

Avinash Kumar
Assistant Professor & Head
Department of History
Patna College, Patna-800005
Mobile No. 6202393206
E-mail Id: avinashisavailable@gmail.com

- औपनिवेशिक भारत के इतिहास का जब अध्ययन किया जाता है तो अक्सर भारतीयों द्वारा औपनिवेशिक शासन के खिलाफ बगावत का जिक्र मिलता है। अंग्रेज़ भारत में पहले तो तिजारत करने आए थे, लेकिन वे यहाँ की सियासत और रियासत पर क़ाबिज़ हो गए। रियासत और सियासत पूरी तरह से नैतिक आदर्शों पर नहीं की जाती है। चाहे अरस्तू हो या चाणक्य, या अटल बिहारी वाजपेयी- सब ने यही कहा है कि राजनीति की राह बड़ी रपटीली होती है जो खून से सनी है। इसलिए अंग्रेज़ भारतीयों का शोषण और दमन करेंगे और दमन-शोषण के खिलाफ बगावत होगी-बेहद आसान और स्वाभाविक बात है। लेकिन क्या कभी इस बारे में ख्याल किया जा सकता है कि अंग्रेजों के एक निर्णय का विरोध यहाँ रह रहे अंग्रेजों और खासकर अंग्रेज़ महिलाओं ने किया हो। बात अगर सिर्फ सांकेतिक विरोध का हो तब भी विश्वसनीय हो सकती है, लेकिन विरोध के स्वर इतने ऊँचे थे कि बाजाब्ता वायसराय को बंदी बनाकर जबर्दस्ती ब्रिटेन जाने वाले जहाज में भेज देने की योजना बना ली गई थी। और ताज्जुब की बात यह थी कि भारतीय उस वायसराय के जाने पर आँसू बहा रहे थे।

- सनद रहे कि इतिहास सिर्फ तिथियों और नामों का संकलन मात्र नहीं है। यह किसी घटना के द्वारा लाये गए हर तरह के परिवर्तनों का गहन अध्ययन है।
- ऊपर में जिस घटना की पृष्ठभूमि बताई गई है-वह घटना भारतीय इतिहास में ईल्बर्ट बिल विवाद के नाम से मशहूर है। इस विवाद के साथ एक तथ्य आश्चर्य जनक रूप से जुड़ा है कि प्रस्तावित बिल शायद भारतीयों को उतना फायदा नहीं पहुंचाता, जितना फायदा इसने निरस्त होकर पहुंचाया। 1857 की क्रान्ति के बाद भारत की मुख्य भूमि पर अंग्रेज़ो के खिलाफ जो सबसे बड़ा विद्रोह हुआ, वह किसी भारतीय राज्य, भारतीय समुदाय या भारतीय संगठन द्वारा न होकर अंग्रेज़ के द्वारा किया गया, जिसे बहुधा श्वेत विद्रोह या White Mutiny भी कहा जाता है।

- 1857 की क्रान्ति ने अंग्रेजों में एक अजीब-सा खौफ पैदा कर दिया था। जिस तरीके से अंग्रेजों ने भारतीयों के प्रति और भारतीयों ने अंग्रेजों के प्रति हिंसा का इस्तेमाल किया था, उसकी मिसाल पहले नहीं मिलती है। इसने भारतीयों और अंग्रेजों के बीच अविश्वास का माहौल बना दिया। इसके चलते अंग्रेजों ने भारत के ऊपर अपनी पकड़ को मजबूत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। प्रशासनिक परिवर्तन तो किए ही गए-भारत की सत्ता का कंपनी से संसद को स्थानांतरण, प्रशासन और सेना में अंग्रेजों की संख्यात्मक वृद्ध आदि-पर भारत को बाहर से भी महफूज रखने की कोशिश की गई। जैसे कभी चर्चिल ने भारत को आजादी दिये जाने की चर्चा के क्रम में संसद में कहा था कि वे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बने हैं कि उसके साम्राज्य का खात्मा कर दें।

THE ACCESSION OF THE QUEEN OF INDIA.

"NEW CROWNS FOR OLD ONES!"

बेंजामिन डिस्त्रायली की साम्राज्यवादी सोच का आलम यह था कि दक्षिण भारत में भीषण अकाल पड़े होने के बावजूद उसने लिटन को दिल्ली में दरबार का आयोजन (1877) करने को कहा जिसमें ब्रिटिश महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी होने की घोषणा की गई। कार्टून पत्रिका पंच के इस तस्वीर में भारतीयों के महारानी के सामने समर्पण करते हुए और डिस्त्रायली द्वारा उन्हें भारत का राजमुकुट सौंपते हुए दिखाया गया है।

- भारत ब्रिटिश साम्राज्य का मुकुट मणि है, जिसके निकलते ही ब्रिटेन एक दोयम दर्जे की शक्ति बन जाएगा। ठीक इसी तरह की सोच रखनेवाले थे-ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बेंजामिन डिसरायली। 1860 से 1885 के बीच 25 वर्षों की अवधि में ब्रिटेन में दो लोग छाए रहे-एक डिसरायली और दूसरे ग्लेडस्टोन। डिसरायली जहां अनुदारवादी थे, वहीं दूसरी ओर ग्लेडस्टोन उदारवादी थे। डिसरायली भारत को किसी भी तरह की रियायत देने के सख्त खिलाफ थे, लेकिन ग्लेडस्टोन पर उदारवादी मूल्यों-आजादी तो नहीं, पर समानता और न्याय-आदि का थोड़ा-बहुत असर था। डिसरायली ने भारत पर ब्रिटेन की पकड़ को और मजबूत करने के लिए अपने प्रधानमंत्रित्व-काल में स्वेज़ नहर के ढेर सारे शेयर खरीद लिए थे, जो उनके मुताबिक भारतीय साम्राज्य के लिए रक्त-धमनी के समान था। इतना ही नहीं , भारतीय साम्राज्य को सुरक्षक्षित रखने के लिए उन्होंने अफगानिस्तान को भी नियंत्रित करने की कोशिश की, ताकि भारत पर रूसी आक्रमण की संभावना को खत्म किया जा सके।

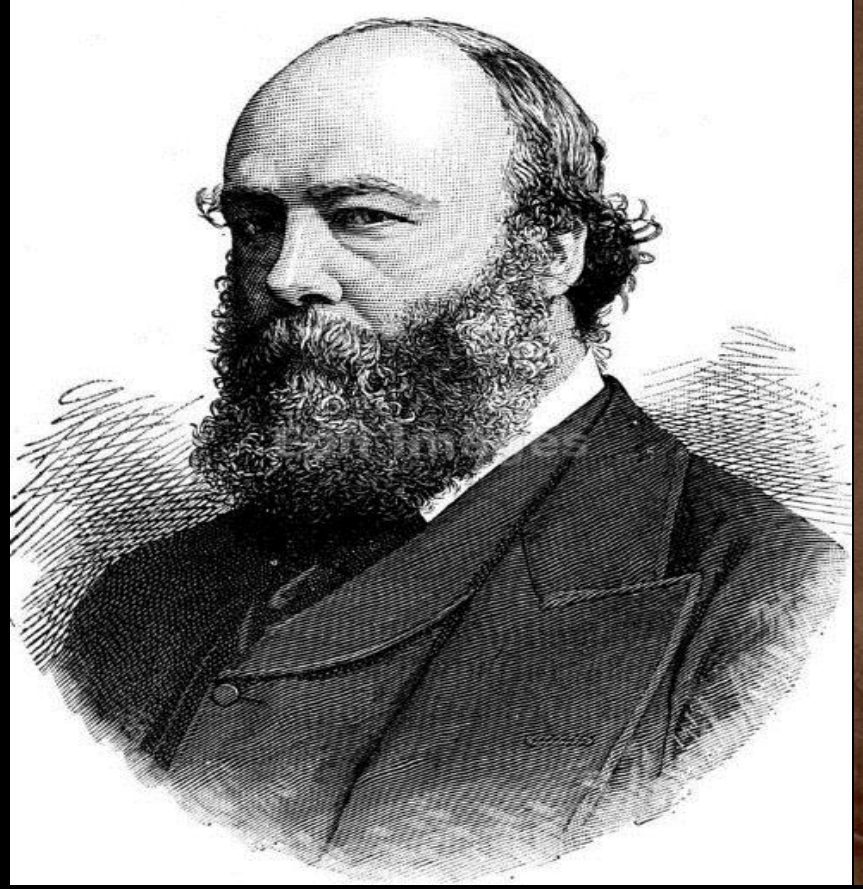

बेंजामिन डिसरायली (प्रधानमंत्री), लॉर्ड सेलिसबरी (भारतमंत्री) और लॉर्ड लिटन(वायसराय)-इन तीन अनुदारवादियों की तिकड़ी ने भारत और भारतीयों को परेशान करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी थी।

- डिसरायली ने अपनी नीतियों को अमली जामा पहनाने के लिए लॉर्ड लिटन (1876-1880) को वायसराय बनाकर भेजा। लिटन घोर अनुवादी था। यहाँ आते ही उसने भारतीयों को परेशान करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। लॉर्ड मेयो द्वारा किए गए उदार कदमों-जैसे-स्वशासन की शुरूआत आदि-सब के असर को खत्म करने की कोशिश की। इसी कोशिश में उसने लोकभाषाओं में छपने वाले अखबारों पर प्रतिबंध लगा दिया(वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट), भारतीयों के शस्त्र रखाने पर प्रतिबंध लगा दिया। भारतीय खर्चे पर उसने अफगान-युद्ध की शुरूआत की। दक्षिण भारत में पड़े भीषण अकाल के बीच उसने दिल्ली दरबार का आयोजन करके महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। इस पर **सुरेन्द्र नाथ बनर्जी** ने एकदम सही टिप्पणी की थी, **"रोम को जलता देखकर नीरो चैन की बंसी बजाता था।"**

- लेकिन सब दिन एकसमान नहीं होता। 1880 के चुनाव में अनुदारवादी हार गए और उदारवादियों की जीत हुई। इसी जीत के साथ लिटन ने अपने पद से इस्तीफे की पेशकश की। उधर अप्रैल 1880 में ग्लेडस्टोन ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। अनुदारवादी लॉर्ड सेलिसबरी (Judicious Bleeding of India Theory के प्रतिपादक थे) और क्रेनब्रुक की जगह पहले हैरिंगटन और बाद में लॉर्ड किम्बरले को भारतमंत्री बनाया गया। लॉर्ड रिपन को वायसराय बनाकर भेजा गया।

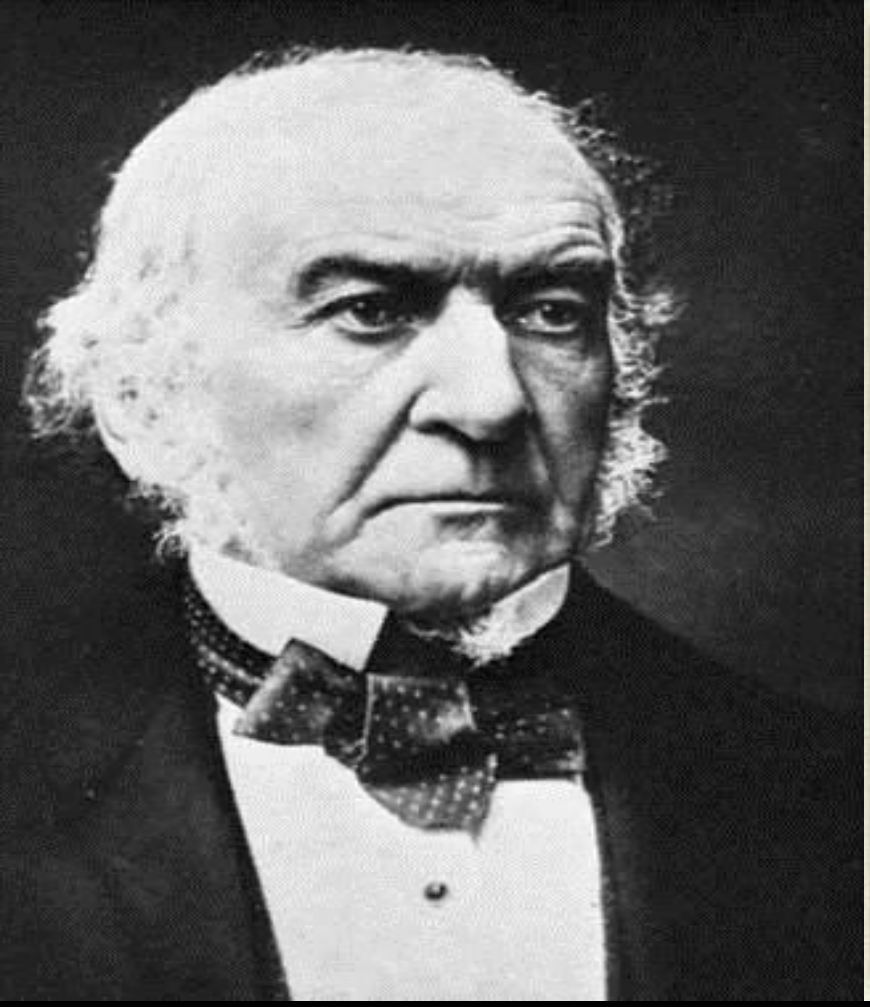

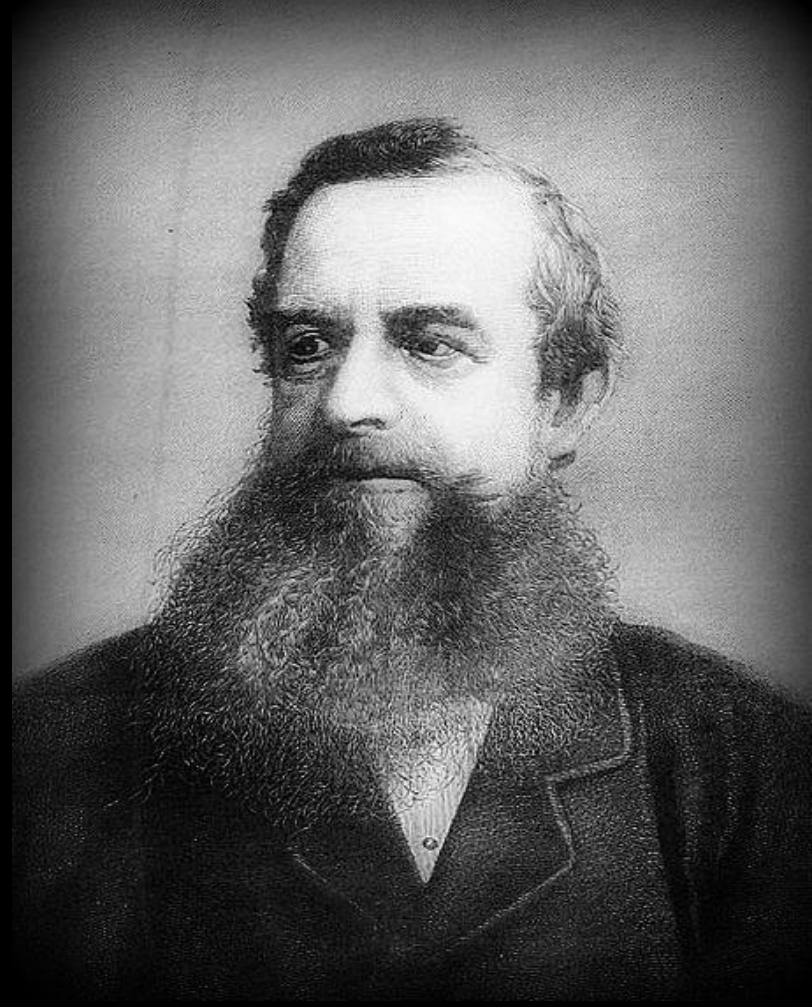

विलियम ग्लेडस्टन (प्रधानमंत्री), लॉर्ड किम्बरले (भारतमंत्री) और लॉर्ड रिपन (वायसराय)-इन तीन उदारवादियों की तिकड़ी ने अपने पूर्ववर्ती अनुदारवादियों द्वारा भारतीयों को दिये गए जख्मों पर मरहम लगाने का काम किया।

- **पी.ई.रॉबर्ट्स** ने उनके बारे में लिखा है, **“रिपन ग्लेडस्टोन के उदार-युग के सटीक प्रतिनिधि थे जिनका शांति, अहस्तक्षेप और स्व-शासन में दृढ़ विश्वास था”**। उदारवादी सरकार की नीतियों के अनुरूप लॉर्ड रिपन ने कुछ प्रगतिशील सुधार किए। सरकारी निर्देशानुसार उन्होंने कई सुधार किए। सबसे पहले उन्होंने द्वितीय अफगान युद्ध को समाप्त किया और अफगान कबीलों द्वारा समर्थन-प्राप्त अब्दुल रहमान खान को अफगानिस्तान का अमीर बनाया और ब्रिटिश फौज को वापस बुला लिया। इससे भारतीय राजस्व की तत्काल बचत हुई और शांति का माहौल बनाया। मजदूरों के शोषण को रोकने के लिए पहला फैक्ट्री कानून 1881 में बनाया जिसके तहत ये प्रावधान थे- 12 साल से कम उम्र के बच्चे से कोई काम नहीं करवाया जा सकता था, काम के बीच में एक घंटे का अवकाश जरूरी हो गया, सप्ताह में 4 दिनों की छुट्टी अनिवार्य हो गया, प्रावधानों के कड़ाई से पालन के लिए पर्यवेक्षक नियुक्त किए गए।

- प्रशासनिक नियंत्रण की जगह उन्होंने स्वशासन को बढ़ावा दिया। मेयो के कदमों को और आगे बढ़ाते हुए वित्तीय विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया गया। इससे शासन और ज्यादा प्रभावी हुआ और साथ ही लोगों को शासकीय प्रशिक्षण भी मिला। वुड डिस्पैच की अनुशंसाओं की प्रगति के आकलन के लिए 1882 में लॉर्ड हंटर की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया। इस आयोग ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार की ज़िम्मेदारी स्थानीय सरकारों पर डाली।
- वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को खत्म कर (1882) लोक भाषाओं में छपनेवाले वाले पत्र-पत्रिकाओं को अंग्रेजी में छपनेवाले अखबारों के समान दर्जा दिया। इंडियन सिविल सर्विस के क्षेत्र में भी रिपन ने सुधार की कोशिश की थी। उन्होंने सरकार से आग्रह किया कि इन सेवाओं में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने के लिए दो आवश्यक कदम उठाए जाएँ-पहला इसकी आयु सीमा 18 से बढ़ाकर ऊपर की जाय और इसकी परीक्षाएँ भारत और ब्रिटेन-दोनों जगहों पर एकसाथ आयोजित की जाएँ। दूसरे उद्देशय में तो उन्हें कामयाबी नहीं मिली, पर पहले उद्देश्य में वे सफल हुए और सर्विस की आयु-सीमा 18 से बढ़ाकर 21 वर्ष कर दी गई।

- सरकारी सेवाओं में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने के लिए उन्होंने कई और कदम उठाए। जैसे **डलहौजी द्वारा स्थापित भारत के पहले इंजीनियरिंगकॉलेज- आज का आईआईटी रूड़की-से उत्तीर्ण बच्चों को सरकारी सेवाओं में लेना शुरू किया।** इन्हीं सुधारों के क्रम में उन्होंने न्यायिक क्षेत्र में भी सुधार किए। भारतीय न्यायाधीशों को भी यूरोपियन न्यायाधीशों के बराबर वेतन व सुविधाएं देनी शुरू की। इतना ही नहीं , कलकत्ता उच्च न्यायालय जो कि उस समय का भारत का सर्वोच्च न्यायालय था, के **मुख्य न्यायाधीश जस्टिस गार्थ के अवकाश जाने पर जस्टिस रमेश चंद्र मित्तर को कार्यवाहक न्यायाधीश बना दिया।**

- लेकिन भारतीय इतिहास में रिपन को इन सुधारों की वजह से नहीं जाना जाता है। यद्यपि अपने अभीष्ट सुधार में वे कामयाब नहीं हो पाये, पर आश्चर्यजनक रूप से वे भारतीयों को राजनीतिक एकीकरण और संगठन का संदेश देने में कामयाब हो गए। जबकि तकरीबन सवा सौ बरसों की अंग्रेजी हुकूमत भी भारतीयों को राजनीतिक एकीकरण का संदेश देने में कामयाब नहीं हुई थी।
- बेशक ये सभी कदम प्रगतिशील और ब्रिटिश आदर्शों-समानता और न्याय-के अनुरूप थे। पर यूरोपियन की बराबरी में भारतीयों को खड़ा कर देने से यूरोपियन लोगों के जातीय दंभ को ठेस पहुंचा जिसके तहत वे अपने को सर्वश्रेष्ठ और अतुलनीय मानते थे। उनकी पूरी औपनिवेशिक सोच ही जातीय श्रेष्ठता पर आधारित थी। अगर एक भारतीय भी उनकी बराबरी कर सकता था तो उनका शासक जाति से होने का क्या फायदा? उनमें रोष लगातार बढ़ता जा रहा था, पर इसे निकालने का उचित मौका नहीं मिल रहा था।

- लिटन के समय की दमनकारी नीतियों की तुलना में रिपन के ये कदम भारतीय लोगों के जख्मी दिलों पर मरहम लगाने के समान थे। ये जेठ की दुपहरी के बाद सावन की फुहार जैसा था। कहते हैं कि पंजाब और अवध का अधिग्रहण करके डलहौजी ने 1857 की क्रान्ति को अवश्यंभावी बना दिया था, बहुत कुछ वैसा ही लिटन की नीतियों ने भी कर दिया था। लेकिन 1857 की क्रान्ति विफल हो गई। पर लिटन के बाद आए रिपन ने 1857 की जैसी कोई क्रान्ति तो नहीं होने दी, पर एक शाश्वत क्रान्ति की पृष्ठभूमि उसने अवश्य तैयार कर दी थी।

- रिपन के आगमन तक भारतीय,प्रशासनिक एवं न्यायिक सेवाओं में आ चुके थे। भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत यूरोपियनों के मुकदमे केवल जस्टिस ऑफ पीस अथवा उच्च न्यायालय के यूरोपियन न्यायाधीश ही सुन सकते थे। प्रेसीडेन्सी नगरों(**बंबई,कलकत्ता,मद्रास**) को छोड़कर किसी भारतीय न्यायाधीश को यूरोपियनों के मुकदमे सुनने का अधिकार नहीं था। रिपन इस भेदभाव को उचित नहीं समझता था।अतः रिपन ने यह मामला विभिन्न प्रांतीय सरकारों तथा अपनी कौंसिल के सदस्यों के पास उनकी सम्मति के लिए भेजा। किसी ओर से इसका विरोध नहीं हुआ। तत्पश्चात् रिपन ने अपना प्रस्ताव भारत सचिव के पास भेजा और वहाँ भी इसका कोई विरोध नहीं हुआ।अतःउन्होंने अपनी परिषद के कानूनी सहायक सर कर्टनी परजाइन ईलबर्ट को एक कानून का मसौदा तैयार करने को कहा।इसलिए इसे **इल्बर्ट बिल** कहा जाता है।

सी.पी.ईल्बर्ट वायसराय की कार्यकारिणी के कानूनी सलाहकार थे जिन्होंने आपराधिक मामलों में भी भारतीय न्यायाधीशों को अंग्रेजों के समकक्ष बनाने वाला मसौदा पेश किया था। उदारवादी समझे जानेवाले ईल्बर्ट को कानून बनाने में बेजोड़ विशेषज्ञता हासिल थी।

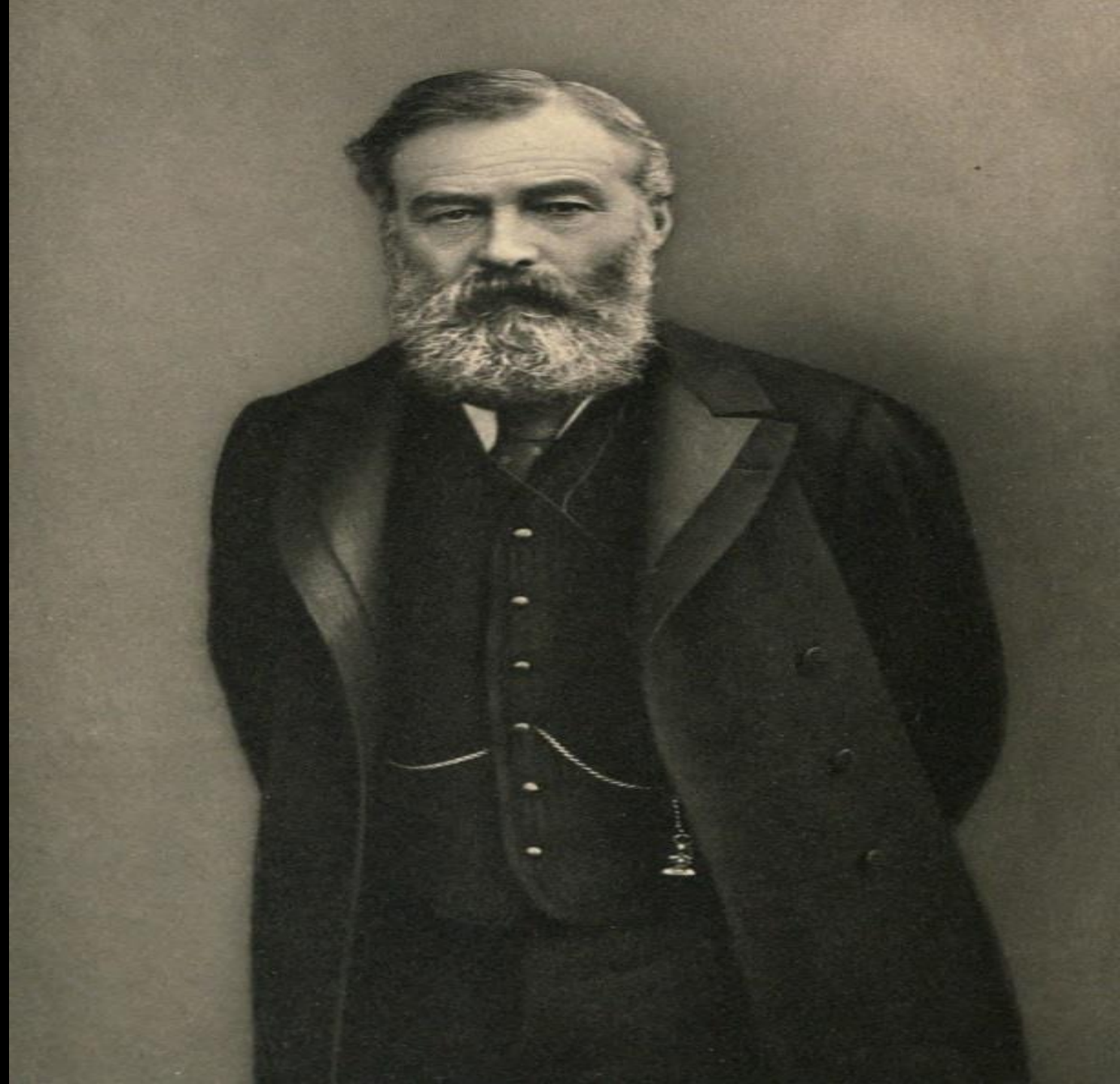

- ईल्बर्ट बिल की पृष्ठभूमि 1858 से बननी शुरू हुई थी। 1857 की क्रान्ति के दमन के बाद ब्रिटिश संसद ने भारतीय प्रशासन को ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से छीनकर अपने हाथों मेन ले लिया। पहले ब्रिटिश सरकार एक चार्टर कंपनी को दिया करती थी। इस चार्टर को हर 20 साल के बाद संसद के द्वारा संशोधित किया जाता था। इन चार्टरों में लिखित निर्देशों के मुताबिन ही कंपनी को भारतीय प्रशासन चलाना होता था। लेकिन 1857 की क्रान्ति के विभाल प्रभाव-क्षेत्र से स्पष्ट हो गया कि ईस्ट इंडिया कंपनी भारत जैसे विशाल क्षेत्र के प्रशासन के लिए सर्वथा उपयुक्त नहीं थी। इसलिए 1858 में संसद ने भारतीय प्रशासन को अपने हाथों में ले लिया। संसद की नई घोषणा के मुताबिक भारतीय प्रशासन के बेहतर प्रबंधन के लिए एक प्रशासनिक सेवा की शुरुआत की गई जिसे इंडियन सिविल सर्विस कहा गया।

- भारत मंत्री (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया) इसके प्रधान हुआ करते थे। इस सेवा में चयन के लिए सिर्फ प्रतिभा को आधार बनाया गया था। जबकि इससे पूर्व कॉर्नवालिस के समय से बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की सिफ़ारिशों के आधार पर कंपनी के ऊंचे ओहदों पर बहाली का सिलसला चलता आ रहा था। नई सेवा में नियुक्ति के लिए एक बड़ी ही कठिन चयन परीक्षा से गुजरना होता था। चयन ही काफी नहीं था। इसका प्रशिक्षण भी बड़ा कठोर था। लंदन में इसके आयोजन की वजह से इसमें भारतीयों के चयन बेहद मुश्किल था। फिर भी इस सेवा के शुरू होने (1861) के मात्र दो साल बाद 1863 में प्रथम भारतीय उम्मीदवार के तौर पर सत्येन्द्रनाथ टैगोर इसके लिए चयनित होने में कामयाब हो गए। ये गुरूदेव रवीद्र नाथ टैगोर के बड़े भाई थे।

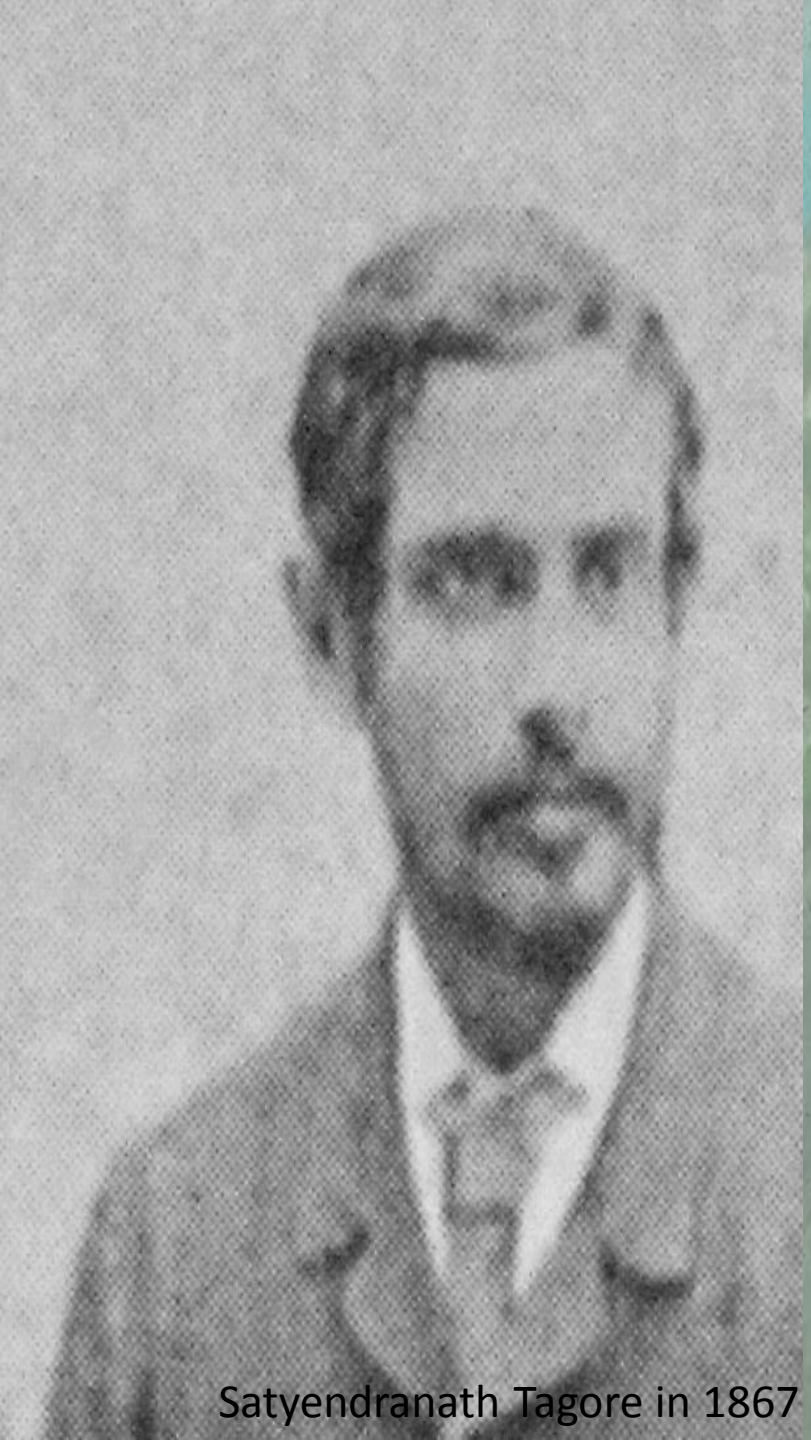

Satyendranath Tagore in 1867

Satyendranath Tagore

(1st June 1842 - 9th January 1923)

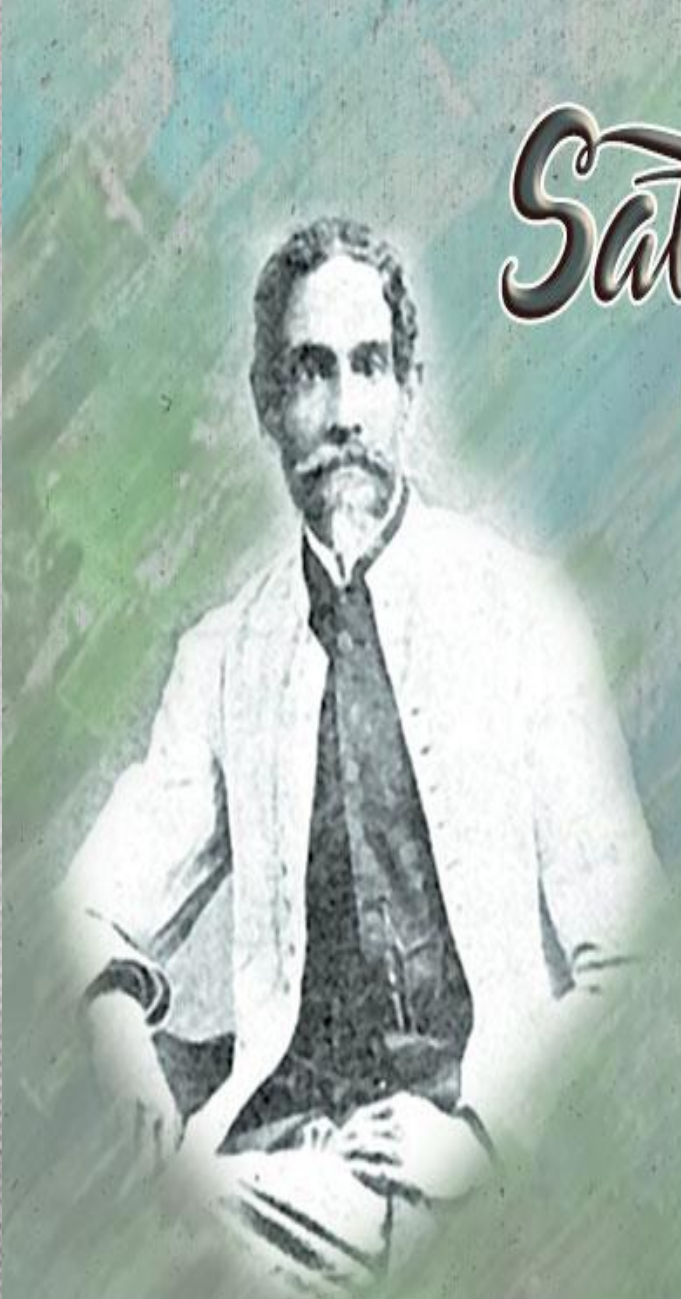

Satyendranath Tagore was the first Indian to join the Indian Civil Service. He was an author, song composer, linguist and made significant contribution towards the emancipation of women in Indian society during the British Rule. Satyendranath took the path of reforming and developing Indian society. He was one of the persons associated with the Hindu Mela organized to arouse patriotism in people. He composed the patriotic song "mile sabe Bharat santan", "ektan gaho gaan" for the occasion. The song was hailed as the first national anthem of India. Satyendranath wrote a number of other patriotic songs.

Last updated on - June 2017

- अन्य चयनित उम्मीदवारों की तरह भारतीय उम्मीदवार को भी हेलबरी के कॉलेज में प्रशिक्षण दिया गया। इसमें भी सत्येन्द्रनाथ टैगोर का प्रदर्शन शानदार रहा। लेकिन जब पूरी प्रक्रिया से गुजरने के बाद पद, सुविधा और पदस्थापना की बात आई तो अपनी तमाम आदर्श घोषणाओं को धता बताते हुए जातीय विभेद की ब्रिटिश नीति को तरजीह दिया गया। राजस्व और प्रशासन की जगह भारतीय उम्मीदवार को न्यायिक सेवा में भेज दिया गया। सत्येंद्र नाथ टैगोर को बंबई प्रेसीडेंसी की सतारा रियासत में न्यायाधीश बनाया गया। लेकिन इतने विभेद से ही बात बन जाती तो कोई बात नहीं होती। न्यायिक सेवा में पदस्थापना के बाद भी भारतीय अधिकारियों को पंगु बनाए रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। जब किसी मुकदमे में कोई अंग्रेज़ या यूरोपियन आरोपी होता था तो भारतीय न्यायाधीश उस केस की सुनवाई नहीं कर सकते थे। यह भारतीय अधिकारियों के लिए काफी दुःखदायी स्थिति हुआ करती थी।

- लेकिन सत्येन्द्रनाथ टैगोर ने इस परिपाटी के खिलाफ कोई खास आवाज नहीं उठाई। 1869 में-गांधी जी के जन्म का वर्ष-में तीन लोगों का चयन इंडियन सिविल सर्विस में हुआ-पहले थे-रोमेश चन्द्र दत्त जो बाद में 1899 में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए और Economic History of India नामक शानदार किताब लिखकर अंग्रेजों की औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों की परत-दर-परत बखिया उधेड़ दी। दूसरे थे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जिन्होंने इस सेवा से बर्खास्त होने के बाद 1876 में इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की जो कांग्रेस का पूर्वगामी संगठन बना और तीसरे थे-बिहारी लाल गुप्ता। इसी बिहारी लाल गुप्ता ने भारतीय न्यायाधीशों के साथ किए जा रहे उपर्युक्त भेद-भाव के खिलाफ पहली बाद आवाज बुलंद किया।

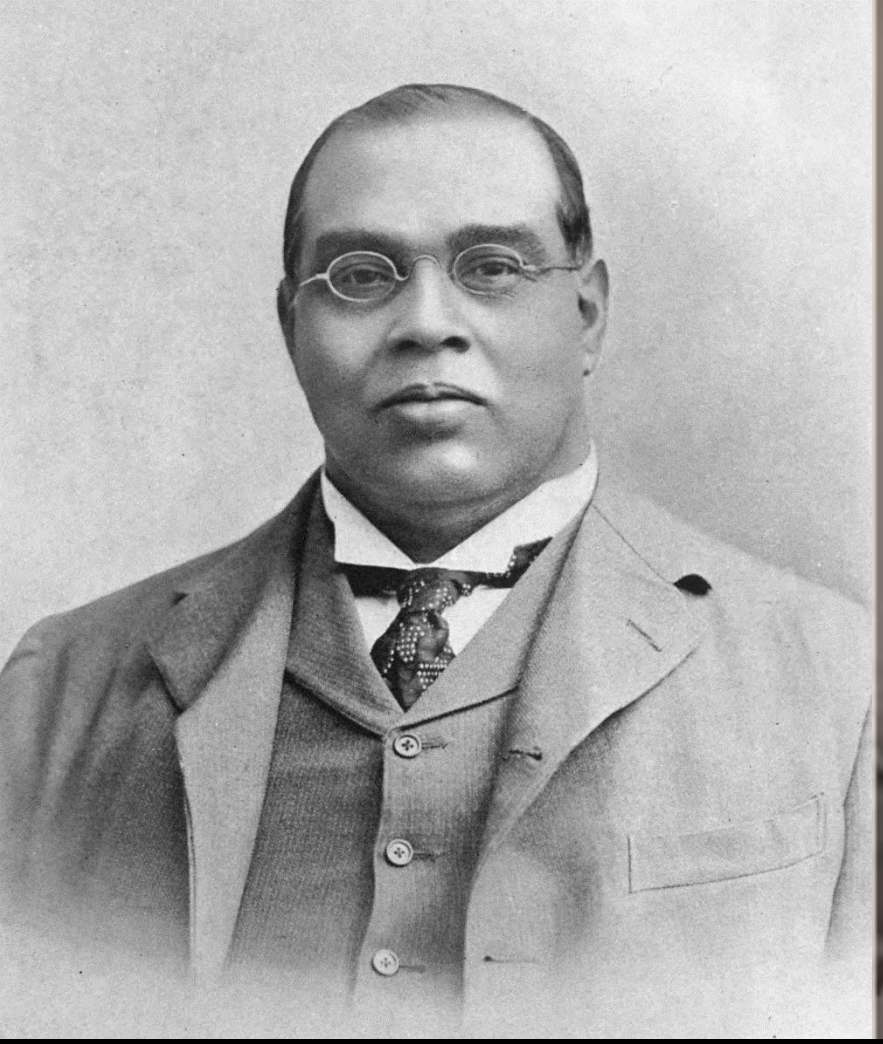

रोमेश चन्द्र दत्त, बेहारी लाल गुप्ता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-इन तीनों ने एक साथ 1869(गांधी जी के जन्म का वर्ष)आईसीएस की परीक्षा उत्तीर्ण की। दत्त ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू का रहस्योद्घाटन किया तो बेहारी लाल गुप्ता ने उसके नस्लवाद का। सुरेन्द्र नाथ ने सेवा से बर्खास्त होने के बाद इंडियन एसोसिएशन की स्थापना (1876) की जो कांग्रेस की पूर्व पीठिका बनी।

- बिहारी लाल गुप्ता को कछार का जिला जज बनाकर भेजा गया। पूर्वोत्तर का यह इलाका अपने चाय के बागानों के लिए मशहूर था। चाय बागानों के साथ इस क्षेत्र में जूट बागान और नील बागान भी भरपूर संख्या में थे। इन नए-नए बागाओं में से अधिकांश के मालिक-अंग्रेज़, यूरोपियन या एंग्लो-इंडियन-हुआ करते थे। ये सब नस्लवादी सोच से ओत-प्रोत थे। इसी सोच के वशीभूत होकर बागान-मालिक भारतीयों के साथ हर वक्त बेहद अमानवीय व्यवहार किया करते थे। आर्थिक शोषण तो जगजाहिर था पर मानसिक, शारीरिक और वाचिक शोषण भी कम न था। भारतीयों के साथ अर्द्ध और असभ्य मानव की तरह व्यवहार किया जाता था। इसलिए तय था कि न्यायालयों में इनके खिलाफ शिकायतें की जाती थीं।

- लेकिन इन बागान-मालिकों को मिली एक विशेष छूट- कोई अंग्रेज़ या यूरोपियन न्यायाधीश ही इनके खिलाफ मुकदमे की सुनवाई कर सकता था- की वजह से अक्सर ये गुनाहगार होते हुए भी साफ बच निकल जाते थे। बिहारी लाल गुप्ता के सामने भी ऐसे कई मुकदमे आए। परंतु चली आ रही विभेदकारी परिपाटी की वजह से वे कुछ भी कर पाने की हालत में नहीं थे। इस दयनीय स्थिति की शिकायत उन्होंने वायसराय लॉर्ड रिपन से की और घोषित ब्रिटिश नीति-समानता और न्याय-के आधार पर स्थिति के समाधान की गुजारिश की। इस अनुरोध के बाद वायसाय ने अपनी कार्यकारिणी के कानूनी सदस्य इल्बर्ट को कानूनी फेर-बदल करने का निर्देश दिया। वायसराय के इस निर्देश पर उन्होंने उपर्युक्त मसौदे को कार्यकारिणी में पेश किया।

- इस बिल के अनुसार भारतीय सिविल सेवाओं तया सांविधि सेवाओं के सदस्यों, सहायक कमिश्नरों और छावनी के मजिस्ट्रेटों को जस्टिस ऑफ पीस बनने का अधिकार दिया गया। सत्र न्यायाधीशों एवं जिला न्यायाधीशों को पदेन जस्टिस ऑफ पीस बना दिया गया तया सहायक सत्र न्यायाधीशों को तीन वर्ष कार्य करने के पश्चात् यूरोपियनों के मुकदमे सुनने का अधिकार दिया गया । इस बिल का मूल उद्देश्य भारतीय न्यायाधीशों पर लगे प्रजातीय प्रतिबंधों को हटाना या। फरवरी, 1882 में यह बिल भारतीय धारा सभा में प्रस्तुत किया गया। किन्तु आंग्ल समाज ने इसका संगठित विरोध करना प्रारंभ कर दिया। भारत स्थित अंग्रेजों ने ब्रिटिश सरकार तया समाचार-पत्रों को लिखा कि भारत में यूरोपियन स्त्रियों की दशा शोचनीय होती जा रही है।

- मसौदे के तैयार करने के दिनों में ऐसी अफवाह भी फैलाई गई थी कि कलकत्ता में एक अंग्रेज़ महिला का किसी भारतीय ने बलात्कार किया था। प्रस्तावित प्रावधान के मुताबिक अब अंग्रेज़ महिला को भारतीय न्यायाधीश के सामने पेश होना पड़ता और उनसे भारतीय न्यायाधीश सवाल-जबाब कर सकते थे। अंग्रेजों की बहुत बड़ी खामी ये थी कि वे भारतीयों के बारे में बड़े रूढ़िवादी विचार रखते थे। सती-प्रथा और विधवाओं की प्रस्थिति के आधार पर भारतीयों के बारे में वे विचार रखते थे कि भारतीय महिलाओं के प्रति बड़े बेरहम होते हैं और औरतों के बारे में उनके खयालात बहुत अमानवीय और पाशविक होते हैं। इसी आधार पर उनका इस बिल के विरोध में तर्क था कि भारतीय न्यायाधीश इसी नजरिए से अंग्रेज़ औरतों को देखेंगे। यह सीधे-सीधे अंग्रेजी औरतों की अस्मिता पर हमला था। इस तर्क का साथ अंग्रेजी औरतों ने भी दिया और वे बढ़-चढ़ कर इस विरोध में शामिल हुईं।

- अंग्रेज़ औरतों के इस विरोध का भारतीय महिलाओं द्वारा जो विरोध किया गया, वह हमारी नारी जाति-खास कर नवाशिक्षित महिलाओं की भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उज्ज्वल भूमिका को सामने लाता है। बंगाली महिलाओं ने पूरे जोश के साय अंग्रेज़ महिलाओं की उनके बारे में घिनौनी सोच का प्रतिकार करते हुए कहा कि भारतीय महिलाएं किसी मामले में अंग्रेज़ महिलाओं से कम नहीं हैं। वे उसी हद तक अपने अधिकारों के प्रति सजग और जागरूक है, जितनी दुनिया की कोई महिला हो सकती है। उन्होंने औपचारिक रूप से इस बात को साबित भी कर दियाकि पश्चिमी और पूर्वी-हर तरह की शिक्षा में वे बीस है, उन्नीस हैं। सनद रहे कि कलकत्ता विषविद्यालय ने ग्रेजुएट कोर्स में महिलाओं को 1878 में ही प्रवेश दे दिया या, जबकि ब्रिटेनके किसी विश्वविद्यालय ने उस समय तक इस स्तर के कोर्स में महिलाओं को प्रवेश नहीं दिया या।

- एक अंग्रेज ने अपने जाति बंधुओं को संबोधित करते हुए कहा, “क्या वे ऐसे देश में रहना पसंद करेंगे, जहाँ उनकी पत्नी को अपनी आया को एक थप्पड़ मार देने के जुर्म में तीन दिन के कारावास की सजा दी जा सकती है ?” रिपन का उसके ही देशवासियों ने हर प्रकार से बहिष्कार किया तथा यूरोपियन एवं एंग्लो-इंडियन प्रतिरक्षा संघ का गठन कर लिया। कलकत्ता में इस संघ का नेता ग्रिफिथ इवान्स था। कई इंडियन सिविल सर्विस के लोगों ने भी इसका विरोध किया। एक ऐसे ही अधिकारी **जेम्स बीम्स** ने कहा था, **“यह सभी यूरोपियन के लिए अपमानजनक और अरूचिकर है। यह भारत पर ब्रिटिश शासन को बर्बाद कर देगा। .... यह धीरे-धीरे क्रांति की पृष्ठभूमि बनाएगा और एक दिन पूरे देश को तबाह कर देगा।”**

- रिपन जब शिमला से कलकत्ता आये तो उनका खुले रूप से अपमान किया गया। रिपन को ऐसी भयंकर स्थिति उत्पन्न होने की आशा नहीं थी। उनकी तो व्यक्तिगत मान्यता थी कि इस बिल द्वारा अपमान या अनादर का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि यह तो समानता का प्रतीक होगा। फिर भी अंग्रेजों ने इसका बडा व्यापक एवं संगठित विरोध किया जिसे सफेद विद्रोह की संज्ञा दी जाती है.
- रिपन ने इस बिल से संबंधित कागजात इंग्लैण्ड की सरकार के पास भेजे और इंग्लैण्ड की सरकार ने रिपन का पूर्ण समर्थन किया। किन्तु कलकत्ता में अंग्रेजों का आंदोलन अत्यधिक भडक चुका था। आंदोलनकारियों ने यह भी षडयंत्र किया कि रिपन का अपहरण करके उसे बलपूर्वक जहाज में बिठा कर लंदन भेज दिया जाय। इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए डॉ.एस.गोपाल ने लिखा है, "कलकत्ता शीघ्र ही एक ऐसा स्थान बन जायेगा, जहां अब वायसराय सुरक्षित नहीं रह सकेगा।"

ईल्बर्ट बिल विवाद के दौरान नस्लवादी कार्टून पत्रिका पंच ने इस कार्टून को छापा था। इसमें ब्रिटिश भारत को एक हाथी के रूप में दिखाया गया था। हाथी के पीठ पर बैठे आंग्ल-भारतीय उसकी नीतियों के खिलाफ चिल्ला रहे थे।

BCCL 2020. ALL RIGHTS RESERVED

The *Punch* cartoon shows Ripon as the mahout on an elephant, being yelled at by Brits on its back

- अंग्रेजों, और खासकर महिलाओं के इस व्यापक विद्रोह को देखते हुए बाद में रिपन ने इस प्रस्ताव में कतिपय फेर-बदल किए। भारतीय न्यायाधीशों को अंग्रेजों के मामले सुनने का अधिकार तो अक्षुण्ण रखा गया, पर आरोपी अंग्रेजों को एक सहूलियत यह दी गई कि भारतीय जज के द्वारा सुनवाई के दौरान एक ज्यूरी को अनिवार्य बना दिया गया जिसके 50% सदस्यों का अंग्रेज़ होना जरूरी था। जिला अदालत और सत्रह अदालत में भी अंग्रेजों को यही सहूलियत प्रदान कर दी गई। इस संशोधन को क्रिमिनल प्रक्रिया संहिता का हिस्सा बनाते हुए 25 जनवरी 1884 को पास कर दिया गया और 1 मई को यह लागू हो गया।

- यद्यपि यह कानून लागू हो गया, परंतु इसके साथ चले विवाद ने उदारवादी मूल्यों को गहरा धक्का पहुंचाया जिससे रिपन काफी आहत हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने पद से इस्तीफे तक दे दिया।
- मण्डल कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू करने के चलते अपनी सरकार गँवाने के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री **विश्वनाथ प्रताप सिंह** ने कहा था, **"मेरे पैर ठूठ तो ठूठ गए पर मैंने गोल कर दिया है।"** यह एक व्यक्तिगत टिप्पणी मात्र नहीं थी, बल्कि आने वाले समय में मण्डल की सिफ़ारिशों ने भारतीय राजनीति की दशा और दिशा में जो आमूलचूल परिवर्तन लाये- उसकी भविष्यवाणी थी। बिहार (झारखंड भी शामिल) और उत्तर प्रदेश से कांग्रेस का सदा के लिए खात्मा हो गया और पिछड़ों को तो नहीं पर नए सवर्णों (यादवों और कुर्मियों) को सत्ता-सुख मिला।

- इसी से मिलता-जुलता असर ईलबर्ट बिल पर उठे विवाद ने पैदा किया। इस बिल के विरोध में भारत में रह रहे चंद अंग्रेजों ने जिस तरीके से संगठित होकर वायसराय को झुकने के लिए मजबूर किया, वह भारतीयों को संगठन के महत्त्व का दीदार कराने के लिए काफी था। अंग्रेज़ जाति-समानता, न्याय, स्वतन्त्रता-आदि जिन मूल्यों के प्रतिनिधित्व का दंभ भरती थी, उसकी हवा निकल गई। 1857 की क्रान्ति में मिली हार के बाद भारतीतों को अंग्रेजों के खिलाफ खड़े होने का ढंग-तरीका नहीं मिल पा रहा था, इस विवाद ने उस तरीके का सर्वथा निराकरण कर दिया। टीपू, मराठे, सिक्ख, अवध-सब अलग-अलग लड़कर काल के गाल में समा गए। इन क्षेत्रीय ताकतों के प्रयासों की विफलता ने बता दिया कि अलग-अलग और एकल प्रयासों की जगह एकजुट होकर एक अखिल भारतीय प्रयास से ही अंग्रेजों के खिलाफ मुकल्लम जीत हासिल की जा सकती है।

- इस घटना ने भारतीय जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में, "कोई भी स्वाभिमानी भारतीय अब आँख मूँदकर सुस्त नहीं बैठा रह सकता था। जो ईल्बर्ट विवाद के महत्त्व को समझते थे, उनके लिए यह देश भक्ति की महान पुकार थी।" वास्तव में ईल्बर्ट बिल के विरोधी आन्दोलन ने भारत को संगठित करने के लिए प्रेरित किया। **सर हेनरी काटन** के शब्दों में, **"इस विधेयक के विरोध में किए गए यूरोपियन आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीय विचारधारा को जितनी एकता प्रदान की उतनी तो विधेयक पारित होकर भी नहीं कर सकता था।"**

- यूरोपियनों के आन्दोलन से प्रभावित होकर भारतीयों ने भी राष्ट्रीय संस्था के गठन का निश्चय किया। भारतीयों ने महसूस किया कि यदि हम भी अंग्रेजों की भाँति संगठित होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध करें, तो हमे स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। श्री **आर० सी० मजूमदार** लिखते हैं, **"इस आन्दोलन ने भारतीयों को यह भी अनुभव करा दिया कि यदि राजनीतिक प्रगति वांछनीय है, तो केवल एक राष्ट्रीय सभा द्वारा ही सम्भव है। इस सभा का सम्बन्ध विभिन्न प्रान्तों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति से ही होना चाहिए।"**
- अगले साल ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना इस विवाद का मूर्त परिणाम था.

- इस विवाद ने भारतीय राष्ट्रीय प्रतिरोध को कई रूपों में गहराई से प्रभावित किया। इसने अंग्रेजों के बारे में भारतीयों में विद्यमान कई भ्रांतियों का निराकरण कर दिया। मसलन- अंग्रेज़ इंसाफपसंद होते हैं। इतना ही नहीं रिपन के बाद के दिनों के कई वक्तव्य इस बात की तसदीक़ करते हैं कि भारतीय अधिकारियों के साथ बराबरी करने का उनका कोई उद्देश्य नहीं था। उन्होंने माना था कि अगर उन्हें पहले इस बिल से उपजने वाली परिस्थितियों का पूर्वानुमान हो जाता तो वे कतई बिल को पास करवाने की कोशिश नहीं करते। क्योंकि इस बिल ने सिर्फ में ही नहीं बल्कि ब्रिटेन में भी सरकार के लिए मुश्किलें पैदा कर दी थीं। रिपन की इसी अन्यमनस्कता की वजह से बहुत बार इस विवाद को भारत के लिए **“Blessing in Disguise” (कर बुरा हो भला)** भी कहा जाता है।

अंग्रेज़ नस्लवाद में इस तरह आकंठ डूबे थे कि उन्होंने भारतीयों को जानवर मान लिया था जिसे जंजीरों में बांधकर ही नियंत्रित किया जा सकता था। 1857 की क्रान्ति के दमन में मुख्य भूमिका निभानेवाले लॉरेंस को कार्टून पत्रिका पंच में नए साल के अवसर पर प्रधानमंत्री पार्मस्टन को भारत को एक जंजीरों में बंधे बाघ के रूप में सौंपते हुए दिखाया गया है।

- उस समय के एक मशहूर शायर मुंशी उमराव अली उस्मानी ने इस पर एक बड़ा ही व्यंग्यात्मक शेर लिखा था:

बड़ा सुनते थे पहलू में दिल का
जो चीरा तो क़तरा-ए-ख़ूँ न निकला

- निष्कर्ष के तौर पर अंत में यही कहा जा सकता है कि इल्बर्ट बिल विवाद ब्रिटिश भारत की एक ऐसी परिघटना थी जिसमें पहली बार अंग्रेजों के जातीय दंभ का प्रदर्शन हुआ, उनके खोखले और थोथे आदर्श नग्न रूप में सामने आ गए। इसने भारतीयों को अखिल राष्ट्रीय आधार पर संगठित होने की प्रेरणा दी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना इसका सबसे औपचारिक परिणाम बनकर सामने आया जिसने सभी भारतीयों को राजनीतिक रूप से संगठित होने के लिए मंच उपलब्ध करवाया। इसी कांग्रेस के नेतृत्व में चले संघर्ष के उपरान आखिर भारत को आजादी मिली।

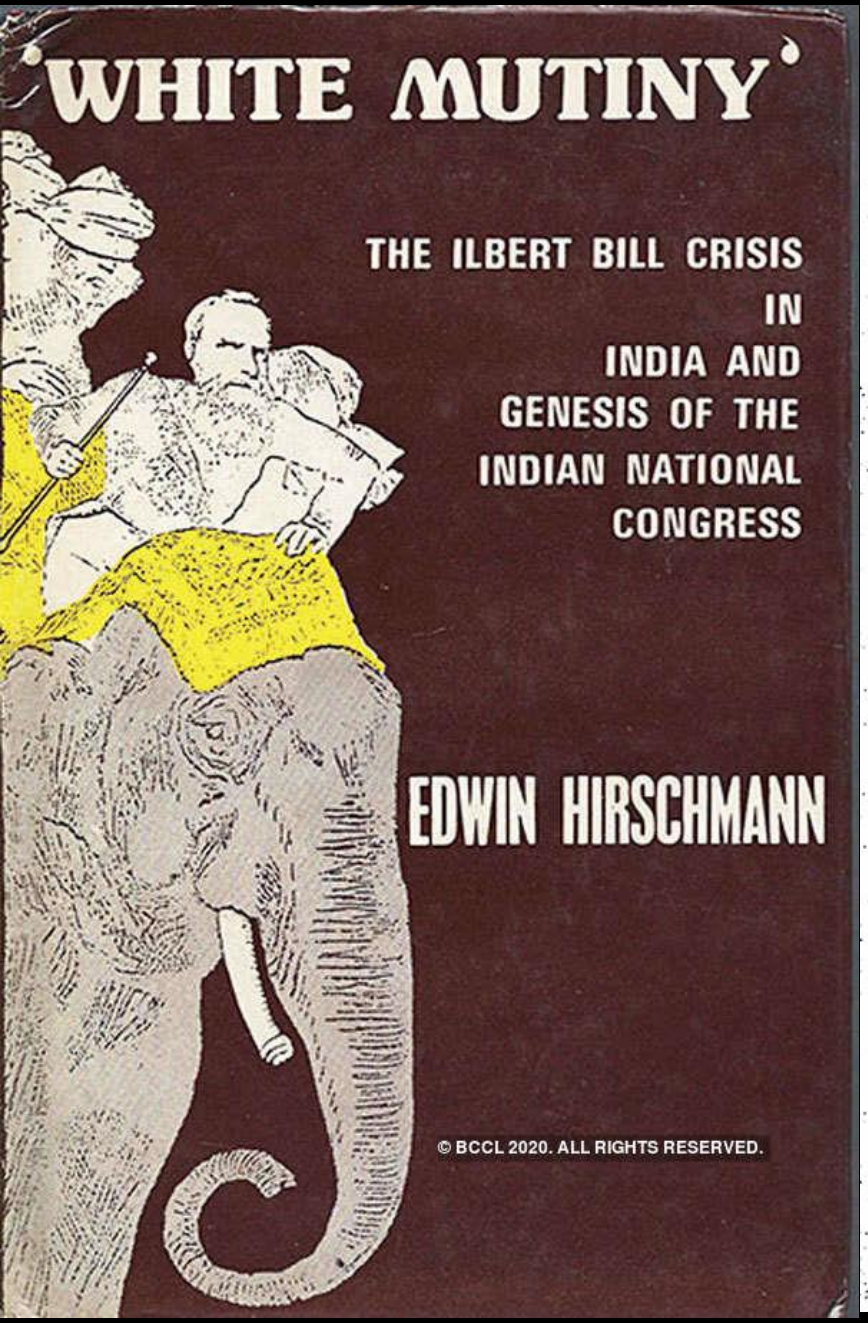

LORD RIPON'S ADMINISTRATION IN INDIA

(1880-84 A.D.)

75282

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY New Delhi

L. P. MATHUR, Ph.D.
Reader in History
University of Udaipur

352·0954
Mat

S. CHAND & CO. (Pvt) LTD.
RAM NAGAR, NEW DELHI-55

Forgotten Books

www.forgottenbooks.com

Copyright © 2016 FB &c Ltd.

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, distributed, or transmitted in any form or by any means, including photocopying, recording, or other electronic or mechanical methods, without the prior written permission of the publisher, except in the case of brief quotations embodied in critical reviews and certain other noncommercial uses permitted by copyright law.

ये तीन किताबें जिनका इस लेख के लिए विशेष अध्ययन किया गया। बाकी सामग्री google वेबसाइट से ली गई है।